# Modern Perspectives on Vedānta

## Proceedings of the 20th International Congress of Vedanta (December 28-31, 2011, JNU, New Delhi)

Edited by

Girish Nath Jha  Bal Ram Singh

R. P. Singh  Diwakar Mishra

**Cataloging in Publication Data — DK**
[Courtesy: D.K. Agencies (P) Ltd. <docinfo@dkagencies.com>]

**International Congress of Vedanta (20th : 2011 : New Delhi, India)**
Modern perspectives on Vedānta : proceedings of the 20th International Congress of Vedanta, December 28-31, 2011, JNU, New Delhi / edited by Girish Nath Jha ... [et al.].
p. cm.
English, Hindi and Sanskrit.
Includes index.
ISBN 9788124606391
ISBN 8124606390

1. Vedanta – Congresses. I. Jha, Girish Nath. II. Title.

DDC 181.48 23

ISBN 13: 978-81-246-0639-1 ISBN 10: 81-246-0639-0
*First published in India in* 2012
© The Editors

AUTHOR'S COPY

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior written permission of both the copyright owner, indicated above, and the publishers.

*Published and printed by*:
D.K. Printworld (P) Ltd.
*Regd. Office* : '*Vedaśrī*', F-395, Sudarshan Park
(Metro Station: Ramesh Nagar)
New Delhi – 110 015
*Phones* : (011) 2545 3975; 2546 6019; *Fax* : (011) 2546 5926
*E-mail* : indology@dkprintworld.com
*Web* : www.dkprintworld.com

48. वेदविज्ञानदृशा वैदिकसृष्टिविद्योपन्यासेन वैदिकतत्वानां विमर्शः 685
— *विश्वबन्धु शर्मा*

49. सिद्धान्त का परिशीलन : दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में – न्याय दर्शन के विशेष सन्दर्भ में 694
— *सुशीला कुमारी*

50. द्वैतवेदान्ते साक्षी 701
— *श्रीनिवास कुमार एन. आचार्य*
— *श्रीनिवास वरखेडि*

51. अद्वैत-वेदान्त में "श्रवण" 711
— *नीलम शर्मा*

52. पातञ्जलयोग परम्परा में प्रमाता का स्वरूप 719
— *अनीता स्वामी*

53. विशिष्टाद्वैत दर्शन में तत्त्वमीमांसा 733
— *ज्योत्सना श्रीवास्तव*

54. अज्ञाने प्रत्यक्षप्रमाणप्रदर्शनम् 749
— *ए. वेंकटराधेश्याम*

55. Perception as a Means of Valid Knowledge in the Upaniṣadic Philosophy 755
— *Surjya Kamal Borah*

56. The Doctrine of Karma-Saṁnyāsa and the Theme of Renunciation in R.K. Narayan's Fiction 765
— *Soham Pain*

57. Doctrine of Bhakti Rasa in Śrī Caitanya Caritāmṛta 777
— *Subhash Phogat*

# 51

# अद्वैत-वेदान्त में "श्रवण"

*नीलम शर्मा* *

**सारांश**

भारतीय दार्शनिक चिन्तनधारा, भवचक्र से दुःखित जीव की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक मुक्ति के ही लक्ष्य से अङ्कुरित, पल्लवित एवं पुष्पित होती है। सभी दर्शनों में मुक्ति को ही परमपुरुषार्थ माना गया है। समस्त दर्शनों का एक ही लक्ष्य मोक्ष है, किन्तु उसकी प्राप्ति के साधन अनेकविध हैं। समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों में मुकुटमणि अद्वैत वेदान्त दर्शन में ब्रह्मभावापत्ति रूप मोक्षोपलब्धि हेतु तीन अन्तरंग साधन स्वीकृत हैं – श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तथापि समस्त अद्वैत वेदान्ताचार्यों में श्रवणादि के स्वरूप, अंगांगित्व और विधिविषयता के सम्बन्ध में विस्तृत शास्त्रार्थ हैं। यथाहि श्रवण क्या है? वह अंगी है या मनन और निदिध्यासन का अंग? श्रवण में विधि है या नहीं? यह अपरोक्षज्ञानजनक है या परोक्षज्ञानजनक? इस विषय में आचार्यों के विचारों में पर्याप्त मतवैभिन्न्य है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसी मतभिन्नता और उसके कारण पर विचार करने का प्रयास किया जाएगा।

**मुख्य शब्द** – श्रवण, मनन, निदिध्यासन, स्वरूप, प्रसङ्ख्यान, अंगी, अंग, अपरोक्षज्ञानजनक, परोक्षज्ञानजनक विधि, विध्याभाव।

समस्त भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में त्रिविध दुःखों से सन्तप्त जीव की ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति ही चिन्तन का परम लक्ष्य है। किन्तु जहाँ एक ओर मुक्ति के स्वरूप में वैविध्य है वहीं सर्वत्र मुक्तिलाभ के साधनरूप में अनेकविध उपाय प्राप्त हैं। सर्वातिशायी अद्वैत वेदान्त दर्शन में "साधनचतुष्ट्यसम्पन्न"[1] अधिकारी के लिए, ब्रह्मभावापत्ति[2] रूप मोक्ष हेतु, अन्तरंग साधनत्रय – श्रवण, मनन, निदिध्यासन सर्वस्वीकृत हैं। यद्यपि इन तीनों के स्वरूप और अंगांगित्व के सम्बन्ध में अद्वैतवेदान्तीय आचार्यों में मतवैभिन्न्य है। सामान्यतः वेद, शास्त्र अथवा ब्रह्मनिष्ठ गुरु से जीवब्रह्मैक्य बोधक विचारों या उपदेशों का ग्रहण श्रवण है। श्रवण में उपदिष्ट तत्त्वज्ञान की दृढ़ता और संशयविकल्पनिवारणार्थ, सम्यक् तर्क-वितर्क इत्यादि करना मनन है। निदिध्यासन आत्मतत्त्व में ही आत्मब्रह्मैक्यविषयक सतत एवं निश्चयपूर्वक ध्यान है।

अद्वैत वेदान्त में श्रवण क्या है? वह अंगी है अथवा मनन या निदिध्यासन का अंग?

---

* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, <neelamsharma.du@gmail.com>

1. नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थभोगविरागः, शमदमादिसाधनसंपत्, मुमुक्षुत्व च
–*ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य*, 1.1.1

2. ब्रह्मभावश्चमोक्षः – *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य* 1.1.4

श्रवणादि में विधि है या नहीं? यह अपरोक्ष ज्ञान का साधन है या परोक्ष ज्ञान का? इस प्रकार के बहुविध प्रश्नों पर परस्पर मतभेद उपलब्ध होते हैं। इन प्रश्नों का समाधान जानने के लिये सर्वप्रथम आचार्यों के श्रवणविषयक मत को जानना आवश्यक है।

**श्रवण का स्वरूप**

आचार्य शंकर के मत में श्रवण से तात्पर्य आचार्य अथवा आगम से प्राप्त आत्मब्रह्मैक्यविषयक तत्त्वज्ञान है।[3] उन्होंने मन्दमति जीव के लिए पुनः-पुनः श्रवण करना किन्तु उत्तम अधिकारियों के लिए एक बार श्रवण करना ही पर्याप्त माना है अर्थात् तत्त्वविज्ञान के ज्ञानपर्यन्त श्रवण करने का मत व्यक्त किया है।[4]

सुरेश्वराचार्य एवं पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्य ने वेदान्त वाक्यों के तात्पर्य निर्धारण एवं विचार रूप में श्रवण को माना है जैसाकि सुरेश्वराचार्य कहते हैं – अर्थविनिश्चायक श्रुतिलिङ्गादि न्यायों के द्वारा अद्वैत परमात्मा में वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य निरूपण श्रवण है।[5] पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्य ने श्रवण का लक्षण आत्मा की अवगति के लिए वेदान्त वाक्यों का विचार तथा *शारीरक भाष्य* के श्रवण रूप में किया है।[6] उन्होंने "आत्मावगति" शब्द का प्रयोग किया है, आत्मजिज्ञासा साधनचतुष्ट्य से हीन जीव को हो नहीं सकती। अतएव साधनचतुष्ट्य सम्पन्न होने के पश्चात् ही श्रुत *शारीरक भाष्य* तथा वेदान्तवाक्यविचार "श्रवण" माना जा सकता है। वाचस्पति मिश्र का मत सुरेश्वराचार्य व पद्मपादाचार्य से थोड़ा भिन्न है क्योंकि वे विचार अथवा तात्पर्य निर्धारण के रूप में श्रवण को न मानकर प्रथम प्रतिपत्ति के रूप में श्रवण को मानते हैं। उनके मत में उपनिषद् वाक्य के श्रवणमात्र से उत्पन्न होने वाली प्रथम प्रतिपत्ति श्रवण है।[7] उन्होंने प्रतिपत्ति को श्रवणादिकों का सामान्य लक्षण माना है। अतएव श्रवणादि में वे कर्म की अपेक्षा नहीं मानते हैं।[8]

इस प्रकार इन आचार्यों की श्रवणस्वरूपविषयक मान्यता भिन्न-भिन्न है। इस भिन्नता के कारण ही श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन में कौन अंगी है और कौन अंग? यह शंका उत्पन्न होती है।

---

3. *बृहदारण्यकोपनिषद्शांकरभाष्य*, 2.4.5.
4. यस्तु स्वयमेव मन्दमतिरप्रतिभानात्तं वाक्यार्थं जिहासेत्तस्यैतस्मिन्नेव वाक्यार्थे स्थिरीकार आवृत्त्यादिवाचोयुक्त्याऽभ्युपेयते। तस्मात्परब्रह्मविषयेऽपि प्रत्यये तदुपायोपदेशेष्वावृत्तिसिद्धिः।।
   – *ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य* 4.1.2
5. श्रुतिलिङ्गादिको न्यायः शब्दशक्तिविवेककृत – *बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक* 2.4.214
6. तथा च श्रवणं नाम आत्मावगतये वेदान्तवाक्यविचारः शारीरक श्रवणं च।
   – *पंचपादिका*, नवम् वर्णक, पृष्ठ 352
7. अत्र चागमाचार्योपदेशाभ्यां सत्यस्य श्रवणम्। – *भामती* पृ. 279
   तावदुपनिषद्वाक्य श्रवणमात्राद्भवति यां किलाचक्षते श्रवणमिति – *भामती* 3.4.26, पृ. 898
8. न च निर्विचिकित्सं तत्त्वमसीति वाक्यार्थमवधारयतः कर्मण्यधिकारोऽस्ति। येन भावनायां वा भावनाकार्ये वा साक्षात्कारे कर्मणामुपयोगः।
   – *भामती* 3.4.26, पृ. 899

## अंगांगित्व विचार

आचार्य शंकर ने आचार्य अथवा आगम से प्राप्त आत्मब्रह्मैक्य-विषयक तत्वज्ञान को श्रवण माना है, जिससे यह प्रतीत होता है कि उनका श्रवण व्यापक अर्थ में है। अतः वे श्रवण को ही अत्यधिक महत्त्व देते हैं। श्रवण ही ब्रह्मसाक्षात्कार में साक्षात् कारण है, ध्यान की आवश्यकता नहीं। ध्यान केवल साक्षात्कार के प्रतिबिम्ब की निवृत्ति के लिए उपादेय हो सकता है।[9] इनके विपरीत आचार्य मण्डनमिश्र श्रवण मनन की अपेक्षा निदिध्यासन को अधिक महत्त्व देते हैं। यद्यपि वे उस रूप में निदिध्यासन को परिभाषित नहीं करते जैसाकि अन्य आचार्य करते हैं। उन्होंने उसके स्थान पर प्रसंख्यान को कहा है। उनके मतानुसार वेदान्त वाक्यों से परोक्षब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिए ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए उपासनादि की आवश्यकता है क्योंकि शब्द प्रमाण के द्वारा तत्त्व का निश्चय हो जाने पर मिथ्याज्ञान की निवृत्ति हो जाती है किन्तु कभी-कभी कारण विशेष से मिथ्याज्ञान की अनुवृत्ति भी होती रहती है। यथाहि आप्तवचन के द्वारा एकचन्द्रनिश्चय हो जाने पर भी द्विचन्द्र आदि मिथ्याज्ञान की अनुवृत्ति अनेकों को अनेकधा होती ही रहती है। अतः तत्त्वदर्शन का अभ्यास तत्त्वदर्शनजन्यसंस्कार को दृढ़ बनाता हुआ अविद्यारूप पूर्वसंस्कारों की निवृत्ति करता है।[10] इस ब्रह्मज्ञान के अभ्यास को मण्डनमिश्र ने ध्यान, भावना, उपासना शब्द से अभिहित किया है। इसी भावनाविशेष उपासना को प्रसङ्ख्यान कहा गया है। अतएव इनके अनुसार ब्रह्मसाक्षात्कार में प्रसङ्ख्यान की ही विशेष महत्ता है।

किन्तु आचार्य सुरेश्वर ने आत्मसाक्षात्कार में श्रवण को ही अङ्गी स्वीकार किया है। उनके मत में यही आत्मतत्त्व के साक्षात्ज्ञान का हेतु है। श्रवणानन्तर उदित आत्मज्ञान ही प्रामाणिक है।[11] ब्रह्मबोध श्रवण के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से होना सुरेश्वराचार्य को कथमपि स्वीकार्य नहीं है।[12] मनन का उपयोग आगमार्थ के निश्चय हेतु ही है अतः मनन के श्रवणाधारित होने से इसे प्रधान नहीं माना जा सकता। उन्होंने मण्डनमिश्र के प्रसङ्ख्यान या ध्यान को ब्रह्मसाक्षात्कार में अनुपयोगी माना है क्योंकि वेदान्तवाक्य श्रवणानन्तर प्रसङ्ख्यान की आवश्यकता को स्वीकारने का अर्थ है कि वेदान्त वाक्य निरर्थक हैं, किन्तु जहाँ वेदान्त वाक्य असफल हैं वहाँ प्रसङ्ख्यान सफल और प्रामाणिक है, ऐसी मान्यता सर्वथा तथैव निराधार है यथा चक्षु से रसनेन्द्रिय का विषय ग्रहण करने की कल्पना।[13] प्रसङ्ख्यान से पूर्व यदि श्रवणज्ञान अपूर्ण एवं अस्पष्ट हो तो वह प्रसङ्ख्यान से कदापि परिपूर्ण और स्पष्ट नहीं हो सकता और यदि श्रवण पूर्व में ही पूर्ण है तो प्रसङ्ख्यान सर्वथा निरर्थक है। यहाँ ध्यातव्य

---

9. *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य* 4.1.2.

10. *ब्रह्मसिद्धि*, पृ. 35.

11. तत्त्वमस्यादि वाक्यार्थं श्रवणान्तरं न किम्।
फलवन्निश्चितज्ञानजन्म साक्षात्समीक्ष्यते।। – *बृहदारण्यकभाष्यवार्तिक* 1.4.906

12. उपरिवत्, 1.4.897.

13. अद्धातममनादृत्य प्रमाणं सदसीति ये।
बुभुत्सन्तेऽन्यतः कुर्यस्तेऽक्ष्णापि रसवेदनम्।। – *नैष्कर्म्यसिद्धि* 3.117

है कि आचार्य सुरेश्वर ने निदिध्यासन को आत्मसाक्षात्कार की प्रथम अवस्था के रूप में स्वीकार किया है। इसे सम्यक् ज्ञान[14] अपरायत्त बोध[15] कहा है। यह ध्यानरूप न होकर ज्ञानरूप ही है।

किन्तु वाचस्पति मिश्र चूंकि श्रवण को उपनिषद् वाक्यों के श्रवण मात्र में ही सीमित कर देते हैं, इसलिए वे ब्रह्मसाक्षात्कार में श्रवण और मनन को अंगरूप और निदिध्यासन को अंगी मानते हैं। उनके अनुसार श्रवण तथा मनन से उपस्कृत निदिध्यासन से उत्पन्न संस्कारयुक्त अन्तःकरण के द्वारा ही आत्मा का साक्षात्कार होता है, जिसके अनन्तर अव्यवहित रूप से कैवल्य की प्राप्ति होती है।[16] अतः निदिध्यासन ही प्रधान है। उनके अनुसार शब्द से परोक्ष ज्ञान ही होता है इसलिए वे शब्द की अपरोक्षज्ञानजनकता का खण्डन करते हुए श्रवण के अंगी पक्ष का निराकरण करते हैं। चूँकि साक्षात्कार प्रत्यक्ष प्रमाण का ही फल है, शब्द का नहीं, इसलिए मीमांसासहित शब्द आत्मसाक्षात्कार का करण नहीं बन सकता। यथा कुटज बीज से वटाङ्कुर की उत्पत्ति संभव नहीं तथैव परोक्षज्ञानजनक शब्द से अपरोक्ष ज्ञानोत्पत्ति संभव नहीं है।[17] "दशमस्त्वमसि" इत्यादि स्थलों में भी शब्द से सहकृत चक्षुरिन्द्रिय से ही दशमत्व का अपरोक्ष ज्ञान होता है, चक्षुरिन्द्रियशून्य अन्धे को तो परोक्ष ज्ञान ही होता है।[18] यदि ऐसा माना जाए कि शब्द श्रवण से ही अन्धे को साक्षात्ज्ञान होता है, तो वहाँ भी स्पर्शनेन्द्रिय से अन्यथा ज्ञानान्तर सहित अन्तः करण के द्वारा ही संभव है।[19] इसी प्रकार ब्रह्मसाक्षात्कार में मन की करणता को श्रुतियाँ भी सिद्ध करती हैं – यथाहि "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः" (*मु.उ.* 3.1.9) "दृश्यते त्वग्रयाबुद्धया" (*कठ.* 3.12)। अतः शब्द परोक्षज्ञानजनक ही है। कल्पतरूपरिमलकार अप्पयदीक्षित ने भी वाचस्पतिमिश्र का समर्थन करते हुए "शब्दापरोक्षवाद" का खण्डन किया है। वे कहते हैं कि यदि शब्द के द्वारा अपरोक्षज्ञान संभव होता तो ब्रह्म के अपरोक्ष स्वभाव होने के कारण ब्रह्म-विषयक शब्दजन्य ज्ञान भी अपरोक्ष होता। परिणामतः वेदान्त श्रवण के अनन्तर ही जीव को ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाना चाहिए था, किन्तु वेदान्त वाक्य सुन लेने पर भी पूर्व भ्रम द्वारा गृहीत ब्रह्म का पारोक्ष्य बना ही रहता है, यही प्रतीति होती है।[20] इसलिए भामती प्रस्थान में परोक्षज्ञानजनक श्रवण को अंगी न मानकर अंग ही माना गया है।

---

14. निदिध्यासन शब्देन सम्यग्ज्ञानं विवक्षितम् – *बृहदारण्यभाष्यवार्तिक* 1.4.899
15. अपरायत्तबोधोऽत्र निदिध्यासनमुच्यते। – उपरिवत् 2.4.217
16. ते (श्रवण मनने) एव च चिन्तासन्ततिमयीं तृतीयां प्रतिपत्तिं (निदिध्यासनरूपं) प्रसुवाते। सा च आदर-नैरन्तर्यदीर्घकालसेविता साक्षात्कारवतीमाधत्ते एव प्रतिपत्तिं चतुर्थीम्, तन्नान्तरीयकं च कैवल्यम्। – *भामती* 3.4.26 पृ. 898
17. न चैष साक्षात्कारो मीमांसासहितस्यापि शब्दस्य प्रमाणस्य फलं, अपितु प्रत्यक्षस्य, तस्यैव तत्फलत्वनियमात्। अन्यथा कुटजबीजादपि वटाङ्कुरोत्पत्तिप्रसङ्गात् – *भामती* 1.1.1, पृ. 57
18. दशमस्त्वमसीत्यत्रापि तत्सचिवादक्षादेव साक्षात्कारः, अन्धादेस्तु परोक्षधीरेव। – *वेदान्तकल्पतरू*, पृ. 56
19. दशमोऽहमस्मीत्यपरोक्षज्ञान् अन्तः करणेन संभवति, शरीरविषयं चेत् स्पर्शनेन्द्रियेण वा ज्ञानान्तरोपनयसहितान्तः करणेन वा संभवति। – *वेदान्तकल्पतरूपरिमल* पृ. 56
20. यदि ब्रह्मस्वतोऽपरोक्षमिति तद्विषयशब्दजन्यमपि ज्ञानमपरोक्षं भवेत् तथा श्रवणजन्यज्ञानमप्यपरोक्षमिति श्रुतवेदान्तस्य पुंसः तस्मिन् पारोक्ष्यभ्रमानुवृत्तिर्न स्यात्। अनुवर्तते च तदनन्तरमपि भ्रमगृहीतं ब्रह्मणि पारोक्ष्यमिति न शब्दादपरोक्षज्ञान्। – *वेदान्तकल्पतरूपरिमल* पृ. 55

किन्तु विवरण प्रस्थान में श्रवण का अंगीरूप में ही स्वीकरण है, क्योंकि यहाँ शब्द से ही ब्रह्मसाक्षात्कार रूप अपरोक्षज्ञान की उत्पत्ति मानी गई है। यहाँ मनन तथा निदिध्यासन से उपस्कृत वेदान्तश्रवण के द्वारा ही आत्मा का साक्षात्कार संभव है। विवरणकार प्रकाशात्मयति के अनुसार फलोपकार में अंगभूत मनन और निदिध्यासन के साथ श्रवण नामक अंगी का विधान किया जाता है।[21] चूँकि प्रमाणरूप श्रवण ब्रह्मसाक्षात्कार का साक्षात्कारण है, मनन और निदिध्यासन चित्त की एकाग्रता के माध्यम से ही ब्रह्मानुभव के हेतु हैं।[22] किन्तु यहाँ एक शंका होती है कि पश्चात्वर्ती मनन और निदिध्यासन पूर्ववर्ती श्रवण के अङ्ग कैसे बन सकते हैं। इस शंका का समाधान करते हुए विवरणभावप्रकाशिकाकार नृसिंहाश्रमाचार्य का मन्तव्य है कि श्रुत वस्तु का ही मनन होता है तथा श्रवण और मनन से स्थिर किए हुए का ही ध्यान किया जाता है। अत: श्रवण की प्रधानता स्वीकार्य है।[23] मनन और निदिध्यासन श्रवणाश्रित होने के कारण श्रवण के अंग हैं। यहाँ यह शंका समीचीन नहीं कि श्रवण (शब्द) से परोक्ष ज्ञान की ही उत्पत्ति होती है, अत: श्रवण आत्मसाक्षात्कार में अङ्गी (प्रधान) कैसे बन सकता है? क्योंकि विवरण प्रस्थान में शब्द से भी अपरोक्षज्ञान संभव माना गया है। प्रकाशात्मयति के अनुसार "त्वं त्वौदनिषद्" इस श्रुति के "औपनिषदम्" पद में प्रयुक्त तद्धित प्रत्यय के द्वारा ब्रह्मावगति-हेतुता सुस्पष्ट है।[24] "यन्मनसा न मनुते" (*केन* 1.6) यह श्रुति स्पष्ट रूप से ब्रह्मसाक्षात्कार के प्रति मन की करणता का निषेध करती है। साथ ही शब्दापरोक्षवादी श्रुतियाँ भी हैं – "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थ:" (*मु.उ.* 3.2.6), "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" (*बृ. उ.* 3.9.26), "नावेदविन्मनुते तं बृहंतम्" (*शा.उ.* 4), "योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसि" (*प्रश्न* 6.8), "तमस: पारं दर्शयति" (*छा.* 7.2.26) इत्यादि श्रुतियों में आचार्य द्वारा श्रुत वेदान्त वाक्य को ही ब्रह्मज्ञान का साधन कहा गया है। इसी प्रकार "दशमस्त्वमसि" उदाहरण से भी विवरणभावप्रकाशिकाकार ने शब्द से अपरोक्ष ज्ञान ही सिद्ध किया है। उनके अनुसार यह नहीं कहा जा सकता कि "दशमस्त्वमसि" ज्ञान इन्द्रियजन्य है, शब्दजन्य नहीं, क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय के बन्द होने पर भी यह ज्ञान होता है। यदि इसे त्वगिन्द्रियजन्य माना जाए तो यह भी युक्तिपूर्ण

---

21. मनननिदिध्यासनाभ्यां फलोपकार्यङ्गाभ्यां सह श्रवणं नाम अङ्गि विधीयते।
– *पंचपादिकाविवरण*, प्रथम वर्णक, पृ. 30

सर्वथा तावत् मनननिदिध्यासनाभ्यां अङ्गभूताभ्यां सह श्रवणविधानमस्त्येव – उपरिवत्, पृ. 33

22. विशिष्टशब्दावधारणं प्रमेयावगमं प्रति अध्यवधानेन कारणं भवति प्रमाणस्य प्रमेयावगमं प्रत्यव्यवधानात्। मनन निदिध्यासने तु चित्तस्य प्रत्यगात्मप्रवणतासंस्कार परिनिष्पन्नतदेकाग्रवृत्तिकार्यद्वारेण ब्रह्मानुभवहेतुता प्रतिपद्येते इति फलं प्रत्यव्यवहितस्य करणस्य विशिष्टाशब्दावधारणस्य व्यवहिते मनननिदिध्यासने तदङ्गे अङ्गीक्रियेते। – *पंचपादिकाविवरण*, प्रथम वर्णक, पृ. 411-12

23. एकात्मविषयत्वेनैव श्रवणादित्रयस्य श्रवणात् श्रुतस्यैव मन्तव्यत्वाद् श्रवणमननाभ्यां स्थिरीकृतस्यैव ध्येयत्वाच्च तेषां समानविषयत्वमिति मननादिवाक्यस्य न तन्मूलत्वमित्यर्थ:।
– *विवरणभावप्रकाशिका*, पृ. 33

24. एवं च "तं त्वौपनिषदम्" इति तद्धितप्रत्ययेन ब्रह्मावगतिहेतुत्वं शब्दस्य दर्शितमुपपन्नं भवति, अपरोक्षावगतेरेव सम्यगवगतित्वात् – *पंचपादिकाविवरण*, प्रथम वर्णक, पृ. 408

नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर तो "दशमस्त्वमसि" वाक्य श्रवण के पूर्व ही इन्द्रिय व्यापार से यह ज्ञान हो जाना चाहिए था, किन्तु ऐसा होता नहीं। इससे शब्द की ही अपरोक्षज्ञानजनकता सिद्ध होती है।[25] अतः श्रवण ही अंगी है, क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धि करने वाले ये मनन निदिध्यासनादि अनुष्ठित होते रहने पर भी, ब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार रूप फल को उत्पन्न नहीं कर सकते, यदि "समर्थ" श्रवण न हुआ हो। जैसे कि यदि धरती में बीज ही न डाला गया हो तो बहुमूल्य खाद, प्रतिदिन सिंचित शुद्ध जल, अनवरुद्ध सूर्यकिरण आदि के पर्याप्त रहने पर भी अङ्कुरोद्गम नहीं होता। प्रकटार्थविवरणकार ने भी श्रवण को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है।[26]

आनन्दगिरि ने भी श्रवण को अंगी और मनन, निदिध्यासन को श्रवण के सहायक रूप में स्वीकार किया है।[27]

## विधिविचार

यहाँ एक अन्य प्रश्न विचारणीय है कि "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" (*बृहदारण्यकोपनिषद* 4.5.6) इत्यादि वाक्य श्रवणादि का विधान करता है अथवा नहीं। यह भी अद्वैत वेदान्ताचार्यों के लिए शास्त्रार्थ का विषय है। विविध आचार्यों में इस विषय में मतान्तर पाया जाता है।

शंकराचार्य ने श्रवणादि में विधि का निराकरण किया है। उनके अनुसार "आत्मावाऽरे द्रष्टव्य" आदि वाक्य दर्शन, श्रवण आदि का विधान नहीं करते अपितु विधिच्छायामात्र हैं, ये तो बहिर्मुखी मनुष्य को विषय भोगों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति से विमुख करते हैं।[28] भाव यह है कि उक्त वाक्यों का आत्मा का दर्शन या श्रवण करो, इस आज्ञा में तात्पर्य नहीं है, अपितु आत्मचिन्तन से भिन्न विविध कर्मानुष्ठान आदि के निषेध में है अन्यथा आत्मचिन्तन कैसे संभव होगा। इन आत्मसम्बन्धी उपदिष्ट विधिवाक्यों में विधीयमानता उसी प्रकार कुण्ठित हो जाती है, जैसे कि पत्थर पर प्रयुक्त छुरे की धार की तीक्ष्णता, क्योंकि ब्रह्म हेयोपादेय नहीं है।[29] किन्तु सुरेश्वराचार्य ने श्रवण, मनन एवं शमदमादि को विधि या विधेय माना है, क्योंकि यह पुरुष के द्वारा किए जा सकते हैं।[30] अतः इन्हें विधिच्छाया न मानकर स्पष्टतः विधिवाक्य माना है।

25. किंच दशमस्त्वमसीति वाक्ये व्यभिचारः। न च तत्रेन्द्रियमेवापरोक्षज्ञान-मुत्पादयति निमीलिताक्षस्यापि त्वगिन्द्रियव्यापार सम्भवादिति वाच्यम्, तच्छब्दश्रवणात् प्रागपि तत्प्रसंगात्।
— *विवरणभावप्रकाशिका*, पृ. 409

26. *प्रकटार्थविवरण* 1.1.1, पृ. 34.

27. श्रवणस्य प्रमाण विचारत्वेन प्रधानत्वादङ्गित्वं मननानिदिध्यासनयोस्तु. . . ., आनन्दगिरिकृत *बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यटीका*, 2.4.5, पृ. 588.

28. किमर्थानि तर्हि "आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः" इत्यादीनि विधिच्छायानि वचनानि स्वभाविकप्रवृत्तिविषयविमुखी करणार्थानीति ब्रूमः, — *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य* 1.1.4

29. तद्विषय लिङ्गादयः श्रूयमाणा अर्थानर्थ्यविषयत्वात्कुण्ठीभवन्त्युपलादिषु प्रयुक्तक्षुरतैक्ष्ण्यादिवत्, अहेयानुपादेय वस्तुविषयत्वात्।
— *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य* 1.1.4

30. श्रवणं मनन तद्वत तथा शमदमादियत्।
पुमान्शक्नोति तत्कर्तुं तस्मादत्रोच्यते॥ — *बृहदारण्यकभाष्यवार्तिक* 2.4.122

केवल निदिध्यासन में विधि को स्वीकार नहीं किया है क्योंकि वह तो आत्मज्ञान या अपरायत्तबोध ही है। वाचस्पतिमिश्र ने भी शंकराचार्य के समान उक्त वाक्यों में विधेयकता का निषेध किया है। उनके अनुसार ये विधिस्वरूप ही हैं। अर्थात् आत्मा की उपासना करनी चाहिए, इत्यादि सदृश वाक्यों में विधि नहीं है, बल्कि विधि का अनुवाद मात्र है।[31] मनन और निदिध्यासन में भी विधि नहीं है, वहाँ भी विधि सदृश वाक्यों से अनुवाद मात्र हैं। मनन और निदिध्यासन से प्राप्त साक्षात्काररूपी फल तो अन्वय और व्यतिरेक से ही सिद्ध है। अतएव इस वाक्य में विधिवाक्यता का कथन नहीं किया जा सकता है।[32] इनके विपरीत प्रकटार्थ विवरणकार ने श्रवण में अपूर्वविधि को स्वीकार किया है, क्योंकि ब्रह्मसाक्षात्कार में श्रवणरूप उपाय का अन्य किसी भी प्रमाण से परिज्ञान नहीं होता, अतः इसमें अपूर्व विधि होगी। किन्तु विवरणकार प्रकाशात्मयति ने श्रवण में अपूर्व विधि का खण्डन करते हुए नियमविधि स्वीकार की है। क्योंकि वेदान्त श्रवण से आत्मसाक्षात्कार के लिए चित्त की एकाग्रता आदि अन्य सहकारी कारणों की भी आवश्यकता पड़ती है, अतः इसमें अपूर्व विधि नहीं मानी जा सकती। श्रवण से होने वाले आत्मसाक्षात्कार में अन्वयव्यतिरेक के व्यभिचार की शंका भी युक्तिसह नहीं है। यतोहि वेदान्त श्रवण से ही आत्मसाक्षात्कार होता है और श्रवणाभाव में भी वामदेवादि को जो साक्षात्कार संभव हो सका है, वहाँ भी पूर्वजन्म का वेदान्त श्रवण ही कारण है। तथापि विवरणप्रस्थान में अन्वयव्यतिरेक सिद्ध साधन में भी विधि की उपपत्ति है। जिस प्रकार तण्डुल निष्पत्ति रूप फल के दृष्ट होने पर भी, अवघातेतर उपायों के प्रतिषेध एवं अवघात की पाक्षिक अप्राप्ति के निवारणार्थ "ब्रीहीनवहन्ति" इस नियमविधि का ग्रहण किया जाता है, तद्वत् श्रवण में भी पाक्षिक अप्राप्ति के निवारण हेतु नियम विधि का आश्रय लिया जाता है।[33]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि अद्वैत वेदान्ताचार्यों में मोक्ष के अंतरंग साधनभूत श्रवण के स्वरूप, अंगांगित्व और विधिविषयक मतभेद हैं। जैसे कि शंकराचार्य श्रवण को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। तथापि मण्डन मिश्र और भामती प्रस्थान में श्रवण को अंगभूत एवं निदिध्यासन को अंगी माना है, वहीं सुरेश्वराचार्य, विवरणप्रस्थान, आनन्दगिरी और प्रकटार्थ विवरणकार ने श्रवण को ही अंगी स्वीकार किया है एवं मनन और निदिध्यासन, श्रवण के अंगभूत हैं। इसी प्रकार विधि-विषयक भी मतान्तर उपलब्ध हैं। जैसेकि शंकराचार्य ने श्रवणादि में विधि का अभाव मानते हुए उन्हें विधिच्छायामात्र कहा है। उनका ही अनुसरण करते हुए भामती प्रस्थान में भी श्रवणादि में विधेयता का निषेध है। तथापि सुरेश्वराचार्य श्रवण और मनन में विधेयकता मानते हुए निदिध्यासन में विध्याभाव मानते हैं। प्रकटार्थविवरणकार ने श्रवण में अपूर्व विधि तो विवरणप्रस्थान में नियम विधि का आश्रय लिया गया है। इस

---

31. आत्मेत्येवोपासीतेति न विधिः, अपितु विधिसरूपोऽयम्। – *भामती* 1.1.4, पृ. 115

32. मनननिदिध्यासनयोरपि न विधिः, तयोः अन्वयव्यतिरेकसिद्ध-साक्षात्कारफलयोः विधिसरूपैर्वचनैरनुवादात्। – *भामती*, पृ. 153

33. तण्डुलनिर्पत्ति-फलतया दृष्टफलेऽप्यवघाते "ब्रीहीनवहन्ति" इति यथा नियमविधिः तथा इह "श्रोतव्य" इति विधिः किं न स्यात्। – *विवरणतात्पर्यदीपिका*, पृ. 34

प्रकार आचार्यों में श्रवणादि विषयक बहुविध मतवैभिन्न्य है किन्तु सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि यह मतभेद प्रायः उनकी श्रवणस्वरूप-विषयक भिन्न मान्यता के कारण ही है। जैसे शंकर आदि कुछ आचार्य श्रवण को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हैं, जिससे मनन एवं निदिध्यासन का तात्पर्य और प्रयोजन उसमें ही निहित रहता है अथवा ये उसके अंग बन जाते हैं और कुछ आचार्य श्रवण को सीमित अर्थ में स्वीकार करते हुए मनन और निदिध्यासन को पृथक् रूप में महत्त्व प्रदान करते हुए, निदिध्यासन अंगीरूप में स्वीकार करते हैं। यही श्रवण में विधि-विषयक मतभेद का भी आधार प्रतीत होता है। जैसे कि शंकर श्रवण को तत्त्वज्ञान या आत्मज्ञानरूप मानते हैं और वाचस्पति मिश्र आदि प्रथम प्रतिपत्ति या ज्ञानरूप ही स्वीकार करते हैं। चूंकि ज्ञान में किसी प्रकार की विधि संभव नहीं है, इसलिए ये आचार्य श्रवणादि में विधि का निषेध करते हैं। किन्तु अन्य आचार्यों के मत में श्रवण तात्पर्यनिर्धारण और विचाररूप है और विचाररूप क्रिया में विधि हो सकती है। अतः ये श्रवण में विधि मानते हैं।

## संदर्भ-ग्रंथ


कुप्पूस्वामी (संपा०), 1937, *मण्डनमिश्र कृत ब्रह्मसिद्धि*, मद्रास।

जोशी, कन्हैयालाल (संपा०), 1982, *ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, वाचस्पतिमिश्र कृत भामती टीका, भामती पर कल्पतरु और कल्पतरु पर परिमल टीका सहित*, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

दुबे, रामसेवक, 2007, *अद्वैतवेदान्त में मुक्ति*, प्राच्य विज्ञान एवं मानविकी शोध संस्थान, इलाहाबाद।

वॉरियर, ए.जी. कृष्णा, 1961, *दि कन्सेप्ट ऑफ् मुक्ति इन अद्वैत वेदान्त*, यूनिवर्सिटी ऑफ् मद्रास।

शर्मा, उर्मिला, 1978, *अद्वैतवेदान्त में तत्त्व और ज्ञान*, छन्दस्वती प्रतिष्ठान, वाराणसी।

शर्मा, राममूर्ति, 1998, *अद्वैतवेदान्त (इतिहास तथा सिद्धान्त)*, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

शास्त्रि, प्रेमवल्लभ त्रिपाठी (अनु०), 2007, *सुरेश्वराचार्यकृत नैष्कर्म्यसिद्धिः*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

शास्त्री, उमेशानन्द, 1979, *बृहदारण्यकोपनिषत् शांकरभाष्य व आनन्दगिरिकृत टीका सहित*, श्री कैलाश आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति, ऋषिकेश।

शास्त्री, श्रीराम (संपा०), 1958, *पद्मपादाचार्य कृत पंचपादिका, पंचपादिका पर आत्मस्वरूप कृत प्रबोध परिशोधिनी विज्ञानात्म कृत तात्पर्यार्थद्योतिनी, प्रकाशात्म कृत पंचपादिकाविवरण, विवरण पर चित्सुखाचार्य कृत तात्पर्यदीपिका एवं नृसिंहाश्रम कृत भावप्रकाशिकाटीका सहित*, गवर्नमेण्ट ओरियन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास।

शास्त्री, सत्यदेव, 1978, *भामतीप्रस्थान और विवरणप्रस्थान का तुलनात्मक अध्ययन*, भारत भारती, वाराणसी।

सरस्वती, सत्यानन्द (व्या०), 2007, *शंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य*, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

सुरेश्वराचार्य, 1914, *बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक*, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना।